

प्रश्न-हिन्दी-साहित्य के काल-विभाजन और नामकरण पर प्रकाश डालिए।

अथवा

हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्येतिहासकारों द्वारा वर्गीकृत काल-विभाजन एवं उनके नामकरण की विवेचना कीजिए ।

अथवा

हिन्दी-साहित्य में इतिहास का काल-विभाजन करते हुए उसके नामकरण पर प्रकाश डालिए।

उत्तर- हिन्दी-साहित्येतिहास में काल-विभाजन एवं उसका नामकरण एक विवाद का विषय रहा है। प्रत्येक साहित्येतिहासकार ने अपने-अपने मतानुसार व चिन्तन के अनुसार हिन्दी-साहित्य को अनेक खण्डों में विभक्त किया है तथा उनका अलग-अलग नामकरण किया है। परन्तु इन विद्वानों के द्वारा काल-विभाजन व नामकरण की विवेचना करने से पहले यह जानना आवश्यक है कि हिन्दी साहित्य में काल-विभाजन की क्या आवश्यकता है?

• काल-विभाजन एवं नामकरण की आवश्यकता:-

इतिहास को स्पष्ट रूप से समझने के लिए काल-विभाजन और नामकरण आवश्यक है। साहित्येतिहास भी इसका अपवाद नहीं है। किसी भी चीज का व्यवस्थित अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है। इसके बिना दिशा हीनता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। वस्तुतः काल-विभाजन से साहित्य के विकास की दिशा, विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों, विभिन्न परिवर्तनों और मोड़ों का पता चलता है। काल-विभाजन एवं नामकरण करने की आवश्यकता इस कारण से भी है, क्योंकि साहित्य सतत प्रवाहमान है तथा प्रत्येक समय की परिस्थितियां बदलती रहती हैं, अतः उन परिस्थितियों के अनुसार नामकरण आवश्यक है। इसी क्रम में उस बदलाव को काल में विभक्त किया जाना आवश्यक होता है।

• काल-विभाजन एवं नामकरण का आधार:-

साहित्य की अंतर्निहित चेतना के क्रमिक विकास, परंपराओं के उत्थान-पतन और विभिन्न प्रवृत्तियों के उदय को स्पष्ट करना ही काल-विभाजन और नामकरण का उद्देश्य है। साहित्य समाज का ही राष्ट्रांकन है। अतः समाज की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का साहित्य में आना स्वाभाविक है। साहित्येतिहास का काल-विभाजन एवं नामकरण भी इससे अप्रभावित नहीं रहता है। किंतु यह कहना अत्युक्ति है कि केवल समाज ही साहित्य का आधार है, क्योंकि कवि की कल्पना और प्रतिभा भी कोई चीज है। साहित्य अथवा साहित्यकार किसी का अनुचर नहीं है, अतः साहित्य की मूल चेतना अपनी अक्षुण्णता बनाए रहती है। अस्तु साहित्य के इतिहास का युग विभाजन और नामकरण का आधार साहित्यिक प्रवृत्ति और चेतना ही होनी चाहिए।

काल-विभाजन एवं नामकरण हेतु एक निश्चित आधार नहीं है। कभी शासक और शासन काल को आधार बनाया जाता है, तो कभी किसी साहित्यकार, राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा साहित्यिक प्रवृत्ति को काल-विभाजन और नामकरण का आधार बनाया जाता है। किंतु यदि हम साहित्य के काल-

विभाजन की चर्चा करते हैं। तो साहित्यिक प्रवृत्ति या मूल साहित्यिक चेतना ही इसका आधार होनी चाहिए। इसमें विवाद नहीं होता है। इसके लिए आवश्यक है कि किसी एक साहित्यिक प्रवृत्ति की प्रधानता हो, यथा- भक्तिकाल, जिसमें भक्ति की प्रधानता रही, अतः अन्य कोई नाम उपयुक्त ही नहीं रहा। कभी किसी राष्ट्रीय, सांस्कृतिक चेतना का प्रभाव पूरे कालखंड साहित्य पर पड़ता है; जैसे पुनर्जागरण, कभी किसी व्यक्ति विशेष (साहित्यिक या राजनीतिक) का प्रभाव रहता है; जैसे भारतेन्दु, द्विवेदी युग आदि।

अतः काल-विभाजन और नामकरण करते समय कई आधार रहते हैं। इसमें एकरूपता का आग्रह ठीक नहीं है। यह विवेकसंगत एवं तर्कसंगत होना चाहिए। उपयुक्त काल-विभाजन वही है जो साहित्य की परंपरा को सही रूप में व्यक्त कर सके। युगों की सीमा का निर्धारण मूल प्रवृत्तियों के शुरू होने और अस्त होने पर आधारित होना चाहिए। जहां से साहित्य की मूल चेतना में परिवर्तन दिखाई दे, वहीं से नए काल का प्रारंभ माना जाएगा।

• हिंदी साहित्य में काल-विभाजन की समस्या-

हिंदी साहित्य में काल-विभाजन के समय अनेक समस्याएं उपस्थित होती हैं। इनमें सर्वप्रथम यह प्रश्न आता है कि हिंदी साहित्य का आरंभ कब से माना जाए। इस संबंध में सबसे पहला प्रयास करने का श्रेय जॉर्ज ग्रियर्सन को है। पर जैसा कि उन्होंने स्वयं अपने ग्रंथ की भूमिका में स्वीकार किया है, उनके सामने अनेक ऐसी कठिनाइयां थीं जिससे वे कालक्रम एवं काल-विभाजन के निर्वाह में पूर्णतः सफल नहीं हो सके। वे लिखते हैं, "सामग्री को यथासंभव कालक्रमानुसार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह सर्वत्र सरल नहीं रहा है, और कतिपय स्थलों पर तो यह असंभव सिद्ध हुआ है। अतएव वे कवि जिनका समय में किसी भी प्रकार स्थिर नहीं कर सका अंतिम अध्याय में वर्णानुक्रम से एक साथ दे दिए गए हैं।"

जॉर्ज ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य का आरंभ सातवीं शती से माना है। परंतु दूसरे इतिहासकार इससे सहमत नहीं हैं। आचार्य शुक्ल का मत है कि पुरानी हिंदी का जन्म तो सातवीं शती के आसपास हो गया था तथा उसमें सिद्धों, जैनियों एवं नाथपंथियों ने काव्य भी लिखा था, पर उनके काव्य में अपने-अपने धर्म-संप्रदाय की शिक्षाएं दी गई हैं। उनमें काव्यगुणों का अभाव है। इसलिए आचार्य शुक्ल इन्हें मात्र 'सांप्रदायिक शिक्षा' मानकर इन्हें काव्य के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं। इस प्रकार, वे दसवीं शताब्दी से ही काल-विभाजन स्वीकार करते हैं। इस मत के समर्थकों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा तथा डॉ. नगेंद्र सातवीं शती के समर्थक हैं।

यह विवाद का विषय है कि हिंदी भाषा और अपभ्रंश का पारस्परिक संबंध क्या है। भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि प्राकृत भाषा से अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय भाषाओं जिनमें हिंदी प्रमुख है, का विकास हुआ। इस प्रकार हिंदी का जन्म अपभ्रंश से हुआ। परंतु दूसरा मत है कि अपभ्रंश हिंदी का ही एक रूप है। उदाहरण के लिए, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपभ्रंश को 'प्राकृताभास हिंदी' माना है; जबकि राहुल सांकृत्यायन ने अपभ्रंश को पुरानी हिंदी की संज्ञा देते हुए अपभ्रंश के सारे कवियों को हिंदी के कवियों के रूप में स्वीकार किया है। हिंदी साहित्य का आरंभ सातवीं शती से मानने पर सरहपाद ही हिंदी के पहले कवि सिद्ध होते हैं। इस प्रकार विद्वानों के दो वर्ग हैं-

1. एक वर्ग में वे विद्वान हैं जो हिंदी साहित्य का आरंभ सातवीं शती से मानते हुए हिंदी और अपभ्रंश को एक ही मानते हैं।

2. दूसरे वर्ग में वे विद्वान हैं जो अपभ्रंश को हिंदी से अलग मानते हुए, हिंदी का आरंभ दसवीं शती से मानते हैं।

ध्यातव्य है कि वर्तमान में हिंदी और अपभ्रंश भाषा के विषय में निश्चित हो चुका है कि ये दोनों भाषाएं एक नहीं हैं। यद्यपि अपभ्रंश हिंदी सहित उत्तर भारत की कई भाषाओं की जननी है, किंतु अधिकांश विद्वानों का मत है कि दोनों अलग-अलग भाषा हैं। दसवीं से चौदहवीं शताब्दी तक का साहित्य अपभ्रंश से भिन्न भाषा का साहित्य है। वस्तुतः इसमें हिंदी की आधुनिक बोलियों के पूर्वरूप की झलक मिल जाती है। इसी कारण हिंदी साहित्य के इतिहास लेखक दसवीं शताब्दी से हिंदी साहित्य का आरंभ स्वीकार करते हैं।

• हिन्दी-साहित्येतिहास में नामकरण-

न केवल साहित्यिक काल-खण्ड बल्कि किसी भी वस्तु, पदार्थ आदि के नामकरण के पीछे कोई-न-कोई तर्क अवश्य रहता है। किसी भी वस्तु या पदार्थ के नामकरण में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह उसे बस्तु या पदार्थ रहता है। वा धर्म को प्रकट कर सके। अतः हिन्दी-साहित्येतिहास कर सके। शासक या साहित्यकार के नाम पर किसी भी काल-खण्ड का केवल तभी नामकरण किया जाना चाहिए में भी काल-विभाजनों का ऐसा नामकरण किया जाना चाहिए जो उस काल के साहित्य की मूल चेतना को बिम्बित जब वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उस काल-विशेष के साहित्य को पूरी तरह से प्रभावित करता हो। उदाहरण के लिए भारतेन्दु अपने युग के न केवल श्रेष्ठ साहित्यकार थे बल्कि उन्होंने साहित्य को एक नई दिशा दी तथा समकालीन साहित्यकारों ने उनकी विचारधारा से प्रभावित होकर ही अनेक साहित्यिक ग्रंथों का निर्माण किया। अतः ऐसी दशा में हिन्दी-साहित्य के उस काल-खण्ड का नाम 'भारतेन्दु-युग' रखने पर किसी को आपत्ति नहीं होगी।

हिन्दी-साहित्येतिहास-लेखन परम्परा अत्यंत पुरानी है। परन्तु इसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण को लगभग एक शताब्दी पहले ही अपनाया गया है। यहीं से साहित्येतिहासकारों ने काल-विभाजन व नामकरण की पद्धति का प्रयोग किया है। हिन्दी के प्रमुख साहित्येतिहासकारों ने अपने ग्रंथों में जो काल-विभाजन एवं नामकरण किया है, उसका विवरण इस प्रकार है-

(१). गार्सा द तांसी- गार्सा द तांसी ने अपने ग्रंथ 'इस्तवार द ला लितरात्यूर ऐन्दुई ऐन्दुस्तानी' में, जिसे कि हिन्दी-साहित्य पहला इतिहास-ग्रंथ कहा जा सकता है, रचनाओं की विधाओं के आधार पर विभाजन किया गया है। उन्होंने इसमें अंग्रेजी वर्णमाला के क्रमानुसार कवियों का परिचय दिया है। इसमें साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर कोई नामकरण नहीं किया गया है। इसमें भी उन्होंने हिन्दी के कवियों की रचनाओं का कम और उर्दू के कवियों की रचनाओं का अधिक विवरण दिया है।

(२). जार्ज ग्रियर्सन- जॉर्ज ग्रियर्सन ने अपने ग्रंथ 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर आफ हिन्दुस्तान' में पहली बार साहित्य के बारह काल-खण्डों के आधार पर विभाजित किया है तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों, शासक, प्रमुख-

साहित्यकार आदि के नाम आदि के आधार पर उसका नामकरण किया है। उन्होंने निम्न रूप में हिन्दी-साहित्य का काल-विभाजन व नामकरण किया है-

(1) चारण-काल (2) पंद्रहवीं शती का धार्मिक पुनर्जागरण (3) जायसी दी प्रेम कविता (4) ब्रज का कृष्ण-संप्रदाय (5) मुगल दरबार (6) तुलसीदास (7) रीति-काव्य (8) तुलसीदास के अन्य परवर्ती (9) अट्ठारहवीं शताब्दी (10) कंपनी के शासन में हिंदुस्तान (11) महारानी विक्टोरिया के शासन में हिंदुस्तान (12) विविध अज्ञात कवि।

(3). **मिश्र बन्धु-** मिश्र बन्धुओं ने अपने ग्रंथ 'मिश्र बंधु विनोद' में हिन्दी साहित्येतिहास के काल विभाजन और नामकरण के बारे में एक सर्वथा नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। जार्ज ग्रियर्सन की उपेक्षा इनका काल विभाजन और नामकरण अधिक तर्कसंगत और वैज्ञानिक लगता है।

1. आरम्भिक काल-

(क) पूर्वारम्भिक काल (संवत् 700-1343)

(ख) उत्तरारम्भिक काल (संवत् 1343 1444)

2. माध्यमिक काल-

(क) पूर्व माध्यमिक काल (संवत् 1445 1560)

(ख) प्रौढ़ माध्यमिक काल (संवत् 1561-1680)

3. अलंकृत काल-

(क) पूर्वालंकृत काल (संवत् 1681-1790)

(ख) उत्तरालंकृत काल (संवत् 1791 1889)

4. परिवर्तन काल- (संवत् 1890-1925)

5. वर्तमान काल- (संवत् 1926 से अब तक)

'मिश्र बन्धु विनोद' में कुल आठ काल खण्ड और उपखण्ड बनाए गये हैं और वैज्ञानिक प्रवृत्ति द्वारा-काल विभाजन किया गया है, लेकिन यह काल-विभाजन भी दोषों से पूर्णतया मुक्त नहीं है। उदाहरण के रूप-में आरम्भिक काल, माध्यमिक काल तथा वर्तमान काल ये नामकरण कालक्रमानुसार हैं, जबकि अलंकृत काल - का नामकरण साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया है। पुनः काल-खण्डों को उपखण्डों में विभक्त करने - में भी कोई तारतम्य नहीं है।

(४). **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-** आचार्य शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में वैज्ञानिक पद्धति को आधार बनाकर काल विभाजन और नामकरण किया है। आज भी उनके द्वारा किया गया काल विभाजन और नामकरण स्वीकार किया जाता है।

(i) आदिकाल- (वीरगाथा काल) संवत् 1050 से 1375 तक

(ii). पूर्वमध्य काल- (भक्ति काल) संवत् 1375 से 1700 तक

(iii) उत्तर मध्यकाल (रीति काल) संवत् 1700 से 1900 तक

(iv) आधुनिक काल (गद्य काल) संवत् 1900 से आज तक

शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य को केवल **चार भागों** में विभक्त करके उसे न केवल सरल बनाया, बल्कि प्रत्येक काल की सीमा का भी निर्धारण कर दिया। इसके बावजूद विद्वानों ने उनके द्वारा किए गए काल-विभाजन तथा नामकरण में कुछ दोष ढूँढ निकाले हैं। विद्वानों का कहना है कि आदिकाल को वीरगाथा काल कहना सर्वथा असंगत है क्योंकि इस युग के साहित्य में कुछ अन्य प्रवृत्तियाँ भी देखने को मिल जाती हैं। परवर्ती साहित्येतिहासकारों में डॉ. श्याम सुंदरदास, डॉ. रामकुमार वर्मा, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त तथा डॉ. नगेन्द्र आदि के नाम गिनवाए जा सकते हैं। इन सभी साहित्येतिहासकारों ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को ही प्रेरणा स्रोत मानकर अपनी-अपनी दृष्टि से हिन्दी साहित्येतिहास को काल खण्डों में विभक्त करते हुए उनका नामकरण किया है।

(५). आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इन्होंने हिन्दी साहित्य का आरम्भ संवत् 1000 से माना है। उनका मत है कि हिन्दी-साहित्य या **पुरानी हिन्दी** की रचनाएँ संवत् 1050 से नहीं बल्कि संवत् 1000 से मिलनी आरम्भ होती हैं। उन्होंने हिन्दी-साहित्य का काल-विभाजन का नामकरण थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

(I). आदिकाल- संवत् 1000 से 1400 तक

(ii) पूर्व मध्यकाल या भक्ति-काल- संवत् 1400 से संवत् 1700 तक

(iii). उत्तर मध्यकाल या श्रृंगार काल- संवत् 1700 से संवत् 1900 तक

(iv). आधुनिक काल या गद्य-काल- संवत् 1900 से आज तक।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के काल-विभाजन व नामकरण की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने रीतिकाल के स्थान पर 'श्रृंगार काल' का तथा आधुनिक काल को '**गद्य-काल**' नाम से अभिहित किया है। परन्तु ये दोनों ही नाम उपयुक्त नहीं जान पड़ते। आधुनिक काल को 'गद्य-काल' कहना तो सर्वथा अनुचित है क्योंकि इस काल में भी काव्य-रचना की प्रवृत्ति निर्बाध रूप से प्रवाहमयी बनी हुई है।

(६). डॉ. नगेन्द्र- डॉ नगेन्द्र द्वारा किए गए काल-विभाजन और नामकरण का उल्लेख किया जा रहा है।

(i) **आदिकाल-** सातवीं शती के मध्य से चौदहवीं शती के मध्य तक

(ii) **भक्तिकाल-** चौदहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक

(iii) **रीति काल-** सत्रहवीं शती के मध्य से उन्नीसवीं शती के मध्य तक

(iv) **आधुनिक काल-** उन्नीसवीं शती के मध्य से अब तक:

(क) पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु काल) सन् 1857 से 1900 ई. तक

(ख) जागरण सुधार काल (द्विवेदी काल) सन् 1900 से 1918 ई. तक

(ग) छायावाद- सन् 1918 से 1938 तक

(घ) छायावादोत्तर-

(i) प्रगति-प्रयोग-काल-सन् 1938-1953

(ii) नवलेखन काल-सन् 1953 से अब तक।

निःसन्देह डॉ० नगेन्द्र द्वारा प्रस्तुत हिन्दी-साहित्य का काल-विभाजन व उसका नामकरण अन्य साहित्यकारों द्वारा प्रस्तुत काल-विभाजन आदि की तुलना में अधिक न्याय-संगत व वैज्ञानिक है परन्तु इसके भी अपने कुछ दोष हैं। उदाहरण के लिए साहित्येतिहासकार ने आधुनिक काल के प्रथम उप खण्ड को भारतेन्दुकाल कहा है। इस काल का नामकरण उन्होंने युगीन साहित्यकार के नाम के आधार पर किया है। परन्तु भारतेन्दु की मृत्यु सन् 1885 में हो गई जबकि इस काल की सीमा सन् 1900 ई. तक निर्धारित की गई है। इसी प्रकार दूसरे उपखण्ड का नामकरण 'द्विवेदी-काल' रखा गया है। द्विवेदी जी मृत्यु सन् 1938 में हुई थी और वे सन् 1920 तक 'सरस्वती पत्रिका' के सम्पादक रहे थे, जिसके फलस्वरूप उन्होंने हिन्दी-साहित्य में एक नया परिवर्तन ला दिया था, फिर भी साहित्येतिहासकार ने उनके नाम पर इस काल-खण्ड का नामकरण करके उसकी सीमा सन् 1918 तक सीमित कर दी है। अतः यहाँ काल-विभाजन व नामकरण में सामंजस्य व तर्क का अभाव है।

इन विद्वानों के अतिरिक्त रमाशंकर 'रसाल', डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री, डॉ० हरिश्चन्द्र वर्मा आदि विद्वानों ने भी हिन्दी-साहित्य के काल-विभाजन व नामकरण के सम्बन्ध में अपने मत प्रकट किए हैं। परन्तु उनके द्वारा प्रयुक्त अथवा प्रस्तावित नामकरण में थोड़े-बहुत परिवर्तन ही दिखाई देते हैं। उनमें मौलिकता के स्थान पर अनुकरण की प्रवृत्ति ही अधिक दिखाई देती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन व उसका नामकरण अपने-आप में एक समस्या है। प्रत्येक साहित्येतिहासकार जब भी किसी नए साहित्येतिहास की रचना करता है, अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण, अनुसंधान के अनुरूप ही उसका काल-विभाजन व नामकरण करता है। फिर भी यह अवश्य कहा जा सकता है कि अधिकांश विद्वानों ने आचार्य शुक्ल के दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए हिन्दी-साहित्य को मुख्यतः चार वर्षों में ही बाँटा है। परन्तु उनमें आदिकाल के नामकरण व काल-सीमा को लेकर पर्याप्त मतभेद हैं। अतः निर्विवाद रूप से आचार्य शुक्ल द्वारा प्रस्तुत काल-विभाजन व नामकरण आज भी प्रासंगिक है फिर भले ही उसकी भी अनेक सीमाएँ हैं। इस संदर्भ में डॉ० बच्चन सिंह ने ठीक ही कहा है- "न तो आचार्य शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' को लेकर दूसरा नया इतिहास लिखा जा सकता है और न ही उसे छोड़करनए इतिहास के लिए शुक्ल जी का इतिहास एक चुनौती है।"